अनेकता में एकता ही अनेकान्त है

–आचार्यश्री विजय इन्द्रदिन्न सूरिजी म.

जैन धर्म और दर्शन ने विश्व को अनुपम और अद्वितीय सिद्धान्त अर्पित किए हैं। वे सिद्धान्त इतने शाश्वत, कालजयी, बुनियादी, जीवंत और युगीन हैं कि विश्व के लिए इनकी प्रासांगिकता सदैव बनी रहती है। जैन-दर्शन के इन्हीं शाश्वत सिद्धान्तों में से एक महान, चुनिंदा और व्यावहारिक सिद्धान्त अनेकान्तवाद या स्याद्वाद है। भारतीय दार्शनिक अखाड़ों में जैन-दर्शन का यही सिद्धान्त सर्वाधिक चर्चित रहा है। कहीं-कहीं पर यह जैन धर्म का पर्याय और पहचान भी बन गया है। किसी ने इसकी प्रशंसा की, किसी ने निंदा। किसी ने आदरणीय बताया और किसी ने घृणास्पद। आदि शंकराचार्य ने इसे संशयवाद होने का आरोप लगाया।

फिर भी इस सिद्धान्त की गहराई तक पहुँचने का प्रयत्न बहुत कम विद्वानों ने किया है। अनेकान्त पर जो भी आरोप लगे हैं वे अनेकान्त को अनेकान्त दृष्टि से न समझने पर ही लगे हैं।

जैन धर्म का यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिससे विश्व के सभी विवाद सुलझ सकते हैं। सभी युद्ध और झगड़े समाप्त हो सकते हैं। इस सिद्धान्त का अनुसरण करते हुए समग्र विश्व में सुख, शांति और समृद्धि का साम्राज्य सर्वत्र छा सकता है।

सन्मतितर्क के कर्ता ने तो यहां तक कहा है कि –

जेण विणा लोगस्सवि, ववहारो सव्वहा ण णिघडइ।
तस्स भुवणेक्कगुरुणो, णमो अणेगंतवायस्स॥

जिसके बिना विश्व का कोई भी व्यवहार सम्यग्रूप से घटित नहीं होता। उस त्रिभुवन के एकमात्र गुरु अनेकान्तवाद को मेरा नमस्कार है।

अनेकान्त की नींव पर ही जैन धर्म और दर्शन की रचना हुई है। जैन धर्म के सभी नियम-उपनियम और आचार परम्परा की आधारशिला यही सिद्धान्त है। अनेकान्त को बिना अच्छी तरह समझे जैन धर्म और दर्शन का व्यवस्थित अध्ययन नहीं हो सकता।

भारत का दार्शनिक इतिहास इस बात का साक्षी है कि दार्शनिक विवाद के क्षेत्र में जैन-दर्शन बहुत बाद में उतरा है। इसलिए जैन दार्शनिकों को सभी दर्शनों का तटस्थ और तुलनात्मक अध्ययन का अवसर प्राप्त हुआ था। उन्होंने सभी दर्शनों के अध्ययन के बाद जैन-दर्शन को दार्शनिक अखाड़ों में उतारा था। परिणामतः जैन-दर्शन अन्य दर्शनों की अपेक्षा अधिक सांगोपांगता और परिपूर्णता लिए हुए हैं। उसमें कहीं भी दार्शनिकत्व की न्यूनता दृष्टिगत नहीं होती।

आचार्य हरिभद्र सूरि और हेमचन्द्राचार्य जैस जैन दार्शनिकों ने अन्य दर्शनों में भी इस अनेकान्तत्व को ढूंढ़ा है।

वीतराग स्तोत्र में हेमचन्द्राचार्य ने कहा है–

इच्छन् प्रधानं सत्त्वाद्य, विरुद्धै र्गुम्फितं गुणैः।
सांख्यः संख्यावतां मुख्यो, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्॥

सांख्य दर्शन प्रधान-प्रकृति को सत्त्व आदि अनेक विरुद्ध गुणों से गुंफित मानता है। इसलिए वह अनेकान्त सिद्धान्त का खंडन नहीं कर सकता।

अध्यात्मोपनिषद् में भी यही बात की गई है–

चित्तमेकमनेकं च रूपं, प्रामाणिकं वदन्।
योगो वैशेषिको वापि, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्॥

न्याय-वैशेषिक एक चित्त को अनेक रूपों में परिणत मानते हैं। अतः वे अनेकान्त सिद्धान्त का खंडन नहीं कर सकते।

विज्ञानस्यैकमाकारं, नानाकारकरम्बितम्।
इच्छंस्तथागतः प्राज्ञो, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्॥

विज्ञानवादी-बौद्ध एक आकार को अनेक आकारों से युक्त मानते हैं। इसलिए वे अनेकान्त सिद्धान्त का खंडन नहीं कर सकते।

जातिवाक्यात्मकं वस्तु, वदन्ननुभवोचितम्।
भट्टो वापि मुरारिर्वा, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्॥

भट्ट और मुरारी के अनुयायी प्रत्येक वस्तु को सामान्य विशेषात्मक मानते हैं। अतः वे अनेकान्त सिद्धान्त का खंडन नहीं कर सकते।

अबद्धं परमार्थेन, बद्धं च व्यवहारतः।
ब्रुवाणो ब्रह्मवेदान्ती, नानेकान्तं प्रतिक्षिपेत्॥

ब्रह्म वेदान्ती परमार्थ से ईश्वर को बद्ध और व्यवहार से उसे अबद्ध मानते हैं। अतः वे अनेकान्त सिद्धान्त का खंडन नहीं कर सकते।

ब्रुवाणा भिन्न-भिन्नार्थान्, नय - भेदव्यपेक्षया।
प्रतिक्षिपेयुर्नो वेदाः, स्याद्वादं सार्वतन्त्रिकम्॥

वेद भी स्याद्वाद का खंडन नहीं कर सकते क्योंकि वे प्रत्येक अर्थ या विषय को नय की अपेक्षा से भिन्न और अभिन्न दोनों मानते हैं। इस प्रकार प्रायः सभी मतावलम्बी स्याद्वाद को स्वीकार करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकान्त या स्याद्वाद को एक प्रखर सिद्धान्त के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान करने का श्रेय जैन-दर्शन और जैन दार्शनिकों को जाता है।

जो वस्तु जैसी है उसे वैसी ही देखना अनेकान्त है। जैन धर्म के सम्यक्त्व–सम्यक्दर्शन का मूलाधार भी यही है। जो वस्तु जैसी है उसे उसी रूप में न देखने से विकृति उत्पन्न होती है।

प्रत्येक वस्तु के दो पक्ष होते हैं। मनुष्य की दृष्टि किसी एक पक्ष पर ही टिकती है। किसी एक ही पक्ष को देखना और उसी का आग्रह रखना एकान्त है। विश्व की द्वन्द्वात्मक स्थिति का मूल कारण यही एकान्त है। जहाँ-जहाँ एकपक्षी और एकांगी दृष्टि होगी वहाँ-वहाँ विवाद और कलह होगा। इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जहाँ-जहाँ विवाद और कलह होगा वहाँ-वहाँ एकांगी दृष्टि होगी। वहाँ एक ही पक्ष का आग्रह होता है और वह आग्रह जब दुराग्रह में परिवर्तित होता है तब विग्रह का जन्म होता है।

किसी एक पक्ष से वस्तु पूर्ण नहीं हो सकती। अगर वह पूर्ण होगी तो दो पक्ष से ही पूर्ण होगी। इसलिए दो पक्ष प्रत्येक पूर्ण वस्तु की वास्तविकता है। यह उसकी सच्चाई है फिर दोनों पक्षों के स्वीकार में संकोच क्यों होना चाहिए।

अनेकता में एकता हमारे गणतंत्र देश का बहुप्रचलित सूत्र है। यह अनेकता में एकता अनेकान्त ही है। संसार में अनंत अनेकताएँ–भिन्नताएँ हैं। बावजूद इन सभी अनेकताओं और भिन्नताओं में कोई न कोई ऐसा तत्त्व है जो एक है, जो समान है, जिसे सभी स्वीकार करते हैं।

इन अनेकताओं में से जो एकता का तत्त्व है, उसे ढूंढ़ लो और उसी को स्वीकार कर लो। एकता स्वीकार करने का यह अर्थ नहीं कि अनेकान्त अनेकता का विरोध करता है। नहीं, अनेकान्त कभी किसी का विरोध नहीं करता। जहाँ विरोध होगा वहाँ अनेकान्त नहीं रहेगा। अनेकान्त निर्विरोध है। जहाँ विरोध होगा वहीं एकान्त आकर खड़ा हो जाएगा। विरोध का अर्थ ही एकान्त है। अनेकान्त तो वस्तु को देखने-परखने की एक दृष्टि प्रदान करता है।

इस तरह अनेकान्त के अनेक व्यावहारिक पहलू है। संसार के कल्याण के लिए ही सर्वज्ञ अरिहंत ने इन सिद्धान्तों की प्ररूपणा की थी। उनके प्रत्येक सिद्धान्त में संसार के सुखी होने का रहस्य छिपा हुआ है। चाहे वह अहिंसा का सिद्धान्त हो या अपरिग्रह का या अनेकान्तवाद का। इन शाश्वत सिद्धान्तों को अधिक से अधिक व्यावहारिक जगत् में लाने का उत्तरदायित्व जिन भगवान के अनुयायी प्रत्येक जैन का है। ● ●

सत्य की खोज

–डॉ. जगदीश चन्द्र जैन

प्राचीन शास्त्रों में सत्य की महिमा का बहुत बखान किया गया है। उपनिषद् का वाक्य है–सत्यं वद, धर्मं चर, यानी सच बोलो और धर्म का आचरण करो। लेकिन सत्य है क्या? सत्य तक कैसे पहुँच सकते हैं?

शंकराचार्य का कथन है–'**ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या**' अर्थात् केवल ब्रह्म ही सत्य है और बाकी सब मिथ्या है। लेकिन ब्रह्म क्या है?

ऋग्वेद में स्तुति के अर्थ में ब्रह्म शब्द का प्रयोग किया गया है। अथर्ववेद में ब्रह्म शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग मिलता है। वेदों के सुप्रसिद्ध टीकाकार आचार्य सायण ने विविध अर्थों में ब्रह्म शब्द का प्रयोग किया है।

यज्ञ-याग-प्रधान वैदिक ग्रन्थों में यज्ञ को ही सत्य कहा है। तत्कालीन समाज में यज्ञ-यागों के माध्यम से ही मनुष्य परमात्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम माना जाता था। देवासुर-संग्राम में, कहते हैं कि देवगण सत्य का आश्रय लेने के कारण बलहीन और असुरगण असत्य का आश्रय लेने के कारण बलवान बन गये। अंत में देवों ने भी यज्ञ का आयोजन किया और उसके बल से उन्हें विजय प्राप्त हुई। अन्यत्र यज्ञ के अतिरिक्त तीन वेद, चक्षु, जल, पृथ्वी और सुवर्ण आदि को सत्य कहा है। इससे जान पड़ता है कि उस समय सत्य का अस्तित्व के अर्थ में प्रयोग प्रचलित था, यथार्थ भाषण से इसका सम्बन्ध नहीं था।

वस्तुतः सच या झूठ बोलने की कल्पना आदिम कालीन जातियों की उपज नहीं है। यह कल्पना उस समय की है जब मनुष्य की आर्थिक परिस्थितियों में उन्नति होने के कारण कायदे- कानून और धार्मिक व्यवस्था की आवश्यकता महसूस होने लगी। पूर्व काल में यह व्यवस्था नहीं थी क्योंकि मानव का जीवन बहुत सीधा-सादा एवं सरल था। वह नैसर्गिक शक्तियों में कल्पित देवी- देवताओं को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ-याग का अनुष्ठान करने में ही अपनी सारी शक्ति लगा देता था। यज्ञ-याग का यही आर्थिक मूल्य भी था।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org